अर्थविज्ञान एवं पाणिनीय व्याकरण

* सुखराम

भाषा में शब्द एवं अर्थ का वही सम्बन्ध है जो शरीर एवं आत्मा का है। अर्थ शब्द की आत्मा है, शब्द शरीर है अर्थात् शब्द भाषा की बाह्य संरचना को बताता है तो अर्थ आंतरिक संरचना को बताता है। अर्थतत्त्व की महत्ता के कारण ही अर्थविज्ञान का स्वतन्त्र शाखा के रूप में चलन हुआ। संस्कृत वैयाकरण दार्शनिकों ने अर्थतत्त्व पर चिन्तन प्रमुखता से किया है।

अर्थविज्ञान के सन्दर्भ में संस्कृत वाङ्मय पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि यास्क ने निरुक्त का आधार ही 'अर्थ' को माना है। अर्थज्ञान के बिना निर्वचन असंभव है– **अर्थनित्यः परीक्षेत।**[1] यास्क ने कई स्थानों पर अर्थ का महत्त्व घोषित किया है। उनका कथन है कि जो वेद पढ़कर उसका अर्थ नहीं जानता, वह ठूंठ है, भारवाहक पशु है। जो अर्थ जानता है, उसे ही समस्त कल्याण प्राप्त होता है। वही ज्ञान की ज्योति से पापों को नष्ट करके ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है–

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।[2]

पतंजलि ने भी महाभाष्य में यही भाव व्यक्त किया है– 'अर्थज्ञान के बिना जो शब्द मूलपाठ के रूप में दुहराया जाता है, वह उसी प्रकार ज्ञान को प्रज्वलित नहीं करता है जैसे बिना अग्नि में डाला हुआ सूखा ईंधन'।

यदधीमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्केन्धौ न तज्ज्वलति कर्हिचित्।।[3]

पाणिनि ने भाषा का सार 'अर्थ' माना है। अतएव 'अर्थवान्' या सार्थक शब्दों को ही 'प्रातिपदिक' (प्रकृति) माना है– **"अर्थवद–धातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्"।**[4] अष्टाध्यायी में शब्दसिद्धि हेतु सूत्रों में विभिन्न अर्थों का निर्देश किया है। पाणिनि ने प्रत्येक धातु तक का पृथक् पृथक् अर्थ बताया है। गणानुसारी विकरण, उपसर्ग एवं प्रत्यय आदि

* शोधछात्र, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

के संयोजन से भी धातुओं के अर्थ परिवर्तित हो जाते हैं। यथा चुरादिगण में पठित **"सृज्"** का अर्थ है 'निर्माण करना' जबकि दिवादिगण में पठित **''सृज्'** धातु का अर्थ है 'छोड़ना'।

स्त्रीप्रत्यय, तद्धितप्रत्यय, कृदन्त, व्युत्पत्ति स्वर आदि विभिन्न प्रसंगों में पाणिनि ने अर्थ को ध्यान में रखते हुए रूपनिर्माण प्रक्रिया का वर्णन किया है। यदि कोई संरचना अर्थ के आधार पर बदलती है तो पाणिनि उसे मुख्य स्थान देते हैं।

स्त्रीप्रत्यय

स्त्रीप्रत्यय प्रकरण के अंतर्गत रूपनिर्माण प्रक्रिया में अर्थविशेष में अनेक शब्दों से प्रत्ययो का विधान किया है। स्त्रीत्व विवक्षा में शब्द से प्रत्यय लगाते समय पाणिनि ने उनके अर्थ को विशेष महत्त्व दिया है।

"जानपदकुण्डगौणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद् वृत्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथनेच्छा केशवेशेषु" प्रकृत सूत्रानुसार 1. जानपद 2. कुण्ड 3. गौण 4. स्थल. 5. भाज 6.नाग 7. काल 8. नील 9. कुश 10. कामुक तथा 11. कबर आदि शब्दों से क्रमशः 1. वृत्ति 2. पात्रविशेष 3. बोरा 4. अकृत्रिम भूमि 5. पकाया हुआ व्यञ्जन 6. अधिक मोटा 7. काला रंग 8. वस्त्र से भिन्न अर्थ 9. लोहे का बना उपकरण विशेष 10. सम्भोग की इच्छा तथा 11. जूड़ा (बालों का सम्हालना) अर्थ वाच्य रहते स्त्रीलिंग में "ङीष" प्रत्यय होता है। यहां पाणिनि निश्चय ही अर्थ को विशेष महत्त्व देते हुए सूत्रनिर्माण कर रहे हैं।

स्त्री प्रत्यय प्रकरण में ऐसे अनेक सूत्र विद्यमान हैं जो अर्थ विशेष में स्त्रीत्व विधायक प्रत्ययों का विधान करते हैं। यथा– **वयसि प्रथमे,**[5] **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्**[6] **स्वाङ्गाच्चोपसर्ज नादसंयोगोपधात्**[7] इत्यादि।

अर्थ की दृष्टि से जिन शब्दों में प्रत्यय का विधान किया गया है ऐसे अनेक शब्द उपलब्ध होते हैं जैसे– **तटी, वृषली, कठी, बह्वृची चन्द्रमुखी अतिकेशी सूर्या, यवानी, आचार्यानी** इत्यादि।

तद्धितप्रत्यय

शब्दों में तद्धित प्रत्ययों का विधान करते समय भी पाणिनि ने अनेकत्र उनके अर्थ को महत्त्व दिया है। यथा– कुलटा। यह द्वयर्थक शब्द है। इसकी दो प्रकार से व्युत्पत्ति की जाती है–

या तु व्यभिचारार्थं कुलान्यटति ।
सती भिक्षुक्यत्र कुलटा।[8]

प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ चरित्रहीना है और द्वितीय व्युत्पत्ति के अनुसार साध्वी सतीत्ववती भिक्षार्थ कुलों में भ्रमण करने वाली स्त्री है। इसी प्रकार **'कौलटेरः'** और **'कौलटेयः'** इन दोनों का मूल यद्यपि कुलटा शब्द है परन्तु प्रथम पक्ष में पाणिनि के अनुसार **'क्षुद्राभ्यो वा'**[9] सूत्र से ट्रक् प्रत्यय लगेगा और द्वितीय पक्ष में **'कुलटाया वा'**[10] सूत्र से ढक् प्रत्यय लगकर **'कौलटेयः'** रूप निष्पन्न होगा। इस प्रकार इन दोनों शब्दों के रूपों में अन्तर इनके अर्थ की भिन्नता के कारण है।

इसी प्रकार **वैकर्णेयः, 'वैकर्णिः' 'कौषीतकेयः',' कौषीतकिः'** जो क्रमशः विकर्ण कुषीतक शब्दों से बने हैं। प्रथम पक्ष में पाणिनि के अनुसार काश्यप अर्थ में विकर्ण एवं कुषीतक शब्दों से अपत्यार्थक **'ढक्'** प्रत्यय लगता है।[11] और **'वैकर्णेयः'** तथा '**कौषीतकेयः'** रूप बनते हैं। अष्टाध्यायी में ऐसे अन्य अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँ प्रत्यय विधान के समय पद के अर्थ को महत्त्व दिया गया है।[12]

कृदन्त प्रकरण

तद्धित की भांति कृदन्त प्रकरण में भी अनेक स्थलों पर पद के अर्थ का विशेष महत्त्व है और तदनुसार प्रत्ययों का विधान किया गया है। 'द्यूतः' और 'द्यूनः' ये एक ही **'दिव्'** धातु से निष्पन्न हुए हैं। पाणिनीय धातुपाठ के अनुसार दिव् धातु **"दिवुक्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद–स्वप्नकान्तिगतिषु"।** इन विविध अर्थों में प्रयुक्त होती है। **'द्यूतः'** यह प्रथम रूप तभी बनता है जब विजय की इच्छा से खेलना अभिप्रेत हो, लेकिन जब यह अर्थ अभिधेय न होकर केवल मनोरंजन की इच्छा से खेलना अभीष्ट हो

तो **'द्यूनः'** रूप बनता है। पाणिनि के अनुसार जब यह उपर्युक्त विजिगीषा अर्थ विद्यमान न हो तो 'त' 'न' में परिवर्तित हो जाता है।[13] इस प्रकार यहां धातुगत तकार का नकार में परिवर्तन अर्थ को आधार मानकर होता है। इसी प्रकार **वित्तः** और **विन्नः,**[14] **भित्तम्– भिन्नम्,**[15] **मर्षितः– अपमृषितम्,**[16] **धृष्टः– धर्षितः** आदि अनेक अन्य कृदन्त शब्द हैं जहाँ अर्थ की भिन्नता के कारण पदरूप में परिवर्तन हो जाता है।

समास

समासों के अन्तर्गत भी अर्थ का महत्त्व लक्षित होता है। पाणिनि ने अनेकत्र अर्थ के आधार पर समास का विधान किया है, यथा– चतुर्थ्यन्त के अर्थ के निमित्त जो वस्तु हो, उसके वाचक पद के साथ तथा अर्थ, बलि (उपहार), हित (कल्याण), सुख और रक्षित इन पदों के साथ चतुर्थ्यन्त का समास होता है– **"चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः"।**[17]

इसी प्रकार कर्मधारय समास का विधायक सूत्र अर्थ के आधार पर ही प्रवृत्त होता है। तदनुसार विशेषण का विशेष्य के साथ बहुलता के साथ समास होता है।[18] उदाहरण के लिये **कृष्णसर्पः।**

उपमानवाचक सुबन्त का सामान्यधर्म वाचक के साथ समास होता है।[19] समासों में और भी अनेक स्थल है जहां अर्थ की महत्ता लक्षित होती है। एतत्सम्बन्धी **'पंचमी भयेन'**[20], **'चार्थे द्वन्द्वः'**[21] आदि सूत्र विशेषेण द्रष्टव्य हैं।

स्वरों के प्रसंग में–

वैदिक भाषा में स्वरों का विशेष महत्त्व था। वहां स्वर परिवर्तन से पदों के अर्थ भी परिवर्तित हो जाते थे। **'इन्द्रशत्रुः'** इसका सुप्रसिद्ध उदाहरण है। पाणिनि ने भी शब्दों पर स्वरों का निर्देश किया है। स्वरनिर्धारण के अन्तर्गत अर्थ का विशेष महत्त्व है। यथा **'प्रीति'** अर्थ वाच्य होने पर तत्पुरुष समास में पूर्वपद प्रकृतिस्वर होता है, परन्तु जहां अर्थ गम्यमान नहीं होगा वहां इसकी अप्रवृत्ति होगी।[22]

'ऐश्वर्य' अर्थ में पतिशब्द परे होने पर तत्पुरुष समास में पूर्वपद को

प्रकृतिस्वर होता है।[23] इसी तरह सादृश्य अर्थ में सदृश एवं प्रतिरूप शब्द परे रहते तत्पुरुष समास में पूर्वपद को प्रकृतिस्वर होता है।[24]

बहुव्रीहि समास में पूर्वपद के स्वांगवाचक होने पर उत्तरपद में स्थित 'मुख' अन्तोदात्त होता है।[25] यथा– गौरमुखः। पूर्वपद स्वांगवाची नहीं होगा तो मुख भी अन्तोदात्त नहीं होगा।

धातुओं के सन्दर्भ में

पाणिनीय धातुपाठ में लगभग दो हजार धातुएं संकलित हैं। पाणिनि ने इनका विभाजन आत्मनेपदी और परस्मैपदी में किया है परन्तु अष्टाध्यायी के अनेक प्रसंगों में अर्थ विशेष के कारण कुछ धातुएं स्वयं परस्मैपदी होते हुए भी आत्मनेपदी हो जाती हैं तथा कुछ आत्मनेपदी धातुएं अर्थ विशेष के कारण परस्मैपदी हो जाती हैं। उदाहरणार्थ– **'दाण् दाने'** यह परस्मैपदी धातु है परन्तु सम् उपसर्ग से युक्त **'दाण्'** धातु यदि तृतीया युक्त हो और तृतीया का प्रयोग चतुर्थी के अर्थ में किया जाए तो वह आत्मनेपदी हो जाती है।[26]

अशिष्ट व्यवहार के सन्दर्भ में सम्प्रदान के अर्थ में तृतीया होती है– **'दास्या संयच्छते कामुकः'** यहां **'दा'** धातु से आत्मनेपद प्रत्यय लगा है अन्यत्र दा धातु परस्मैपदान्त ही होती है– **पाणिना संप्रयच्छति।**

सम् उपसर्ग से युक्त **'चर्'** धातु यदि तृतीया विभक्ति के अर्थ से युक्त हो तो उसमें आत्मनेपद प्रत्यय विहित होता है[27] यथा– **अश्वेन संचरते।**

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि पाणिनि ने विभिन्न संदर्भों में शब्दों के अर्थवैज्ञानिक महत्त्व को स्वीकार किया है। अष्टाध्यायी के एक चौथाई से अधिक सूत्रों में अर्थ के आधार पर रूप रचना का विधान किया गया है। वस्तुतः संस्कृतव्याकरण दर्शन में अर्थविज्ञान का जो सुविकसित रूप देखने को मिलता है उसका मूल पाणिनि के विचारों को माना जा सकता है।

सन्दर्भ –

1. निरुक्त 2 –1

2. वही 1–18
3. महाभाष्य पस्पशाह्निक
4. अष्टा. 1.2.45
5. वही 4.1.20
6. वही 4.1.63
7. वही 4.1.54
8. सिद्धान्तकौमुदी, 4.1.127
9. पा.अ. 4.1.131
10. वही 4.1.127
11. विकर्णकुषीतकात् काश्यपे–अपत्ये ढक्–वैकर्णेयः कौषीतकेयः, अन्यो वैकर्णिः, कौषीतकिः। सिद्धान्तकौमुदी, 4.1.25
12. (क) क्षत्राद् घः– क्षत्रियः। जातावित्येव क्षात्रिरन्यः। सि.कौ. 4.1.138
    (ख) नगरात्कुत्सनप्राविण्ययोः, नगरशब्दाद्घुञ् स्यात्कुत्सने प्राविण्ये च गम्ये। सि. कौ. 4.2.128
    (ग) कृकर्णपर्णाद्भारद्वाजे। पा.अ. 4.2.145
    (घ) मनुष्यतत्स्थ्योर्वुञ्। पा.अ. 44.2.134
    (ङ) असाम्प्रतिके। पा.अ. 4.3.9
13. पा.अ. 8.2.49
14. वित्तो भोगप्रत्ययोः। पा.अ. 8.2.58
15. भित्तं शकलम्। पा.अ. 8.2.59
16. मृषस्तितिक्षायाम्। सेण्निष्ठा किन्न स्यात्, मर्षितः मर्षितवान्। क्षमायां किम्, अपमृषितं वाक्यम्। सि. कौ. 1.2.20
17. विशेषणं विशेष्येण बहुलम्। पा.अ. 2.1.55
18. पा.अ.2.1.36
19. उपमानानि सामान्यवचनैः। पा.अ.2.1.5
20. पा.अ. 2.1.37
21. वही 2.2.29

22. प्रीतौ च – प्रीतौ गम्यमानायां सुखप्रिय इत्येतयोरुत्तरपदयो – स्तत्पुरुषे समासे पूर्वं पदं प्रकृतिस्वरं भवति। पा.अ. 6.2.16
23. पा.अ. 6.2.13
24. पा.अ. 6.2.11
25. प.अ. 6.2.167
26. दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे, पा.अ.1.3.55
27. समस्तृतीयायुक्तात्। पा.अ.1.3.54